

काँगड़ा जनपद के संस्कार-गीतों की संवेदनात्मक मनोभूमि

डॉ. चंद्रकांत सिंह

सहायक प्रोफेसर

हिंदी विभाग

हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला

शोध सारांश:

प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य हिमाचल प्रदेश की लोक संस्कृति या लोक परंपरा का निदर्शन है। यह आलेख हिमाचल प्रदेश के काँगड़ा जनपद पर आधारित है जो अपने पहाड़ी संस्कार, सादगी एवं मिलनसारिता के लिए जाना जाता है। वैश्वीकरण की तेज आंधी जिस तरीके से संस्कृतियों को खंडित कर रही है, उन्हें मिटा रही है ऐसे में लोक को बचाने की जिम्मेदारी सबकी है। प्रस्तुत आलेख यहां के पहाड़ी जीवन की पृष्ठभूमि में लिखा गया है जिसमें हिमाचल के 12 जनपदों की छाया दिखाई पड़ती है। हिमाचल के लोक में लोक गाथा का जो प्रभाव दिखाई पड़ता है उसको तलाशने की कोशिश की गई है, विभिन्न लोकगीत जो मिथक आधारित हैं या राम और कृष्ण की लीलाओं पर आधारित हैं उनके माध्यम से लोक जीवन में उनके प्रभाव को भी देखने की कोशिश की गई है।

समाज में अमीर और गरीब की जो खाई दिखाई पड़ती है, जो विभाजक रेखा दिखाई पड़ती है उसको भी काँगड़ा के एक चर्चित गीत 'गरीबनी दा जाया' के माध्यम से देखने का प्रयास किया गया है जिसमें एक साधारण व्यक्ति प्रयास करता है कि उसको सभी का स्नेह मिले, वह समाज के लिए कारगर भूमिका का निर्वाह प्रस्तुत कर सके। प्रेम की जो विविध स्वरूप हैं उसे वनस्पतियों, जीव-जंतुओं आदि के सहजीवन के माध्यम से प्रस्तुत आलेख में देखने का प्रयास है। जीवन का विविध रूप हर्ष-विषाद की छाया के साथ मिथक और संस्कृति के माध्यम से प्रस्तुत आलेख में परिलक्षित होता है।

बीज शब्द:

लोक, परंपरा, संस्कृति, लोकवार्ता, लोकगाथा, सहजीवन, उत्सव, चैतन्यता, देव-परंपरा

किसी भी देश का लोक वहाँ की अविरल परम्परा एवं संस्कृति का आईना होता है जिसमें उस देश विशेष की संस्कृति उल्लसित होती है। लोक में जीवन की विविध अर्थ-छवियाँ प्रतिध्वनित होती हैं जिसे लोक अपने ढंग से वाणी देता आता है। लोक के विविध स्वर हैं जहाँ लोक ध्वनित होता है मात्र यही नहीं अपितु जीवन को नई ऊर्जा एवं प्राणवत्ता के साथ अभिव्यक्त भी करता है। लोक में स्थान विशेष की परम्परा न केवल सही रूपाकार ग्रहण करती है बल्कि अपनी सम्पूर्ण बानगी में पल-छिन बदलती भी है। लोक साहित्य के विविध घटक हैं जिनमें लोक-वार्ता, लोक-गाथा एवं लोक-गीतों के सामंजस्य एवं समाहार से लोक पुष्ट एवं साकार होता है। यदि ग्रामगीतों या संस्कार-गीतों की बात करें तो ये न केवल वहाँ की जनता के हृदय संवाहक हैं बल्कि इनमें गोचर-अगोचर सत्ता के विविध रूप एवं अर्थ छटाएँ दिखाई पड़ती हैं जिन्हें लोक साधता है, अभिव्यक्ति प्रदान करता है।

भारतीय लोक का तो कहना ही क्या ! अपूर्व सादगी से भरा यह देश अनगिनत परम्पराओं एवं संस्कृतियों का उत्स है। चाहे बात वहाँ के उत्सवों की हो, वन-प्रान्तर की या वहाँ के निवासियों की एक अपूर्व चारुता के मेल एवं संयोजन से इस दिव्य धरा का परिकर बनता है। भारत केवल भूखंड मात्र नहीं है, यह दैवीय भूखंड है जहाँ दिव्यता एवं चैतन्य दोनों का अद्भुत परस है। जहाँ ज्ञान एवं व्यवहार का, शिष्टता एवं लोक का, प्राचीन एवं नवीन का अद्भुत समाहार है। वहाँ की संस्कृति जितनी पुरानी है उतनी ही वहाँ की लोक-वाणी प्राचीन है जिसमें भाव-भाषा, कला-कौशल, आह्लाद-सौन्दर्य आदि की अद्भुत पच्चीकारी है।

भारतीय संस्कृति एवं उसकी विविधता, देवताओं, ऋषियों की तपश्चर्या पर टिप्पणी करते हुए बाल्मीकी प्रसाद सिंह जी ने सही कहा है कि – “तरह-तरह की भाषाओं और बोलियों, देवी-देवताओं, मूल्यों और मान्यताओं, रीति-रिवाजों और विधि-विधानों, ऐंद्रिकता और तपश्चर्या के सहअस्तित्व के कारण भारतीय संस्कृति के छात्रों को यह देश सम्मोहक भी लगता है; और वे इस विविधता से अचंभित भी हो जाते हैं। भारतीय ऋषियों और अर्हंतों द्वारा किया गया उच्च स्तरीय चिंतन, चित्रकारों और कवियों की कल्पनाशीलता और सहजता, मूर्तिकारों वास्तुशास्त्रियों, संगीतकारों, नर्तकों, बुनकरों और कारीगरों की उपलब्धियाँ किसी को भी मुग्ध कर देती हैं। अजंता और एलोरा की गुफाएँ और कई बौद्ध स्तूप ‘परम’ की हिन्दू अवधारणा की दैहिक अभिव्यक्तियाँ हैं। यह उस समय और भी स्पष्ट हो जाता है जब हमें पता चलता है कि इन स्थलों की रचना पर्वतों को तक्षित करने की किस महायोजना के साथ हुई थी और इनके जरिए हमने किस प्रकार हिन्दू विचार, स्थापत्य और मूर्तिकला के प्रावधानों के अनुरूप तर्क-बुद्धि और उपासना के भवनों का निर्माण किया है।” भारत जितना अपूर्व है उतने ही सुन्दर एवं मनोहारी यहाँ के सभी राज्य हैं जिनमें विविध कलाओं, प्रतिभाओं एवं लोकचेतना आदि के दर्शन होते हैं। ठीक ऐसा ही सुन्दर एवं अतुलनीय प्रांत है हिमाचल जिसका नाम लेते ही एक ऐसे प्रांत की छवि मन-मस्तिष्क में उभरती है जो प्राकृतिक विरासत से अक्षुण्ण है जिसके चप्पे-चप्पे में एक अद्वितीय आमद है। जहाँ दैवीय चेतना की अजस्र धारा है। कैलाश पर्वत की अकुंठ सुन्दरता, चीड़-देवदार की खुशनुमा वादियाँ हिमाचल के सौन्दर्य का निर्माण करती हैं। यहाँ के लोगों की निश्छलता, अबोधता एवं सादगी यहाँ के पारम्परिक लोकनृत्यों झमाकड़ा, नाटी आदि में बखूबी दिखाई पड़ती है। आज जब बाजारीकरण एवं वैश्वीकरण की तेज आँधी ने पूरे विश्व को गाँव की शक्ल में तब्दील कर दिया है, वहीं लोक को मिटाने एवं संस्कृति को बाज़ार में बदलने की क्रूर मंशा भी जगजाहिर है। ऐसे में आवश्यकता है लोक को बचाने की, हिमाचली लोक से अदबे-बयार की सुखद विरासत को सहेजने की जिससे विखंडित एवं जीर्ण मानव-मन में नई उमंग- चेतना का संचार हो सके।

हिमाचल के 12 जिले अद्भुत लोक-बिम्ब के आगर हैं। इनका कहना ही क्या, काँगड़ा की काँगड़ी, किन्नौर की किन्नौरी, चंबा की चम्बियाली, सिरमौर की सिरमौरी महज लोक-बोलियाँ मात्र नहीं हैं बल्कि इनमें हिमाचली संस्कृति की सादगी, समृद्धि एवं ऐश्वर्यपरकता की वास्तविक झाँकी दिखाई पड़ती है। देव-परम्परा, उत्सवधर्मिता, एवं लोक-रस से भरे हुए हिमाचल के प्रत्येक जिले में सम्मोहन है, एक जादुई भंगिमा है बात यदि काँगड़ा की करें तो त्रिगर्त नाम से विख्यात यह जनपद देवी जालपा की अद्भुत शक्ति एवं चेतना से भरा हुआ है जहाँ लोक की अद्भुत धारा प्रवाहित होती है, पहाड़ी झरने

की झर-झर के साथ काँगड़ा के लोगों के अंतर्मन में भी एक गैबी सुन्दरता एवं आह्लादपरकता निथरती हुई दिखाई पड़ती है। सम्पूर्ण काँगड़ा लोक-गीतों एवं जनमगीतों की भावधारा से भरा हुआ एवं उल्लसित है जिसके गीतों के गहरे मर्म को आज के बदलते समय में देखने और समझने की आवश्यकता है। हिमाचली कथाकारों एस.आर. हरनोट, बट्टी सिंह भाटिया, मुरारी शर्मा, रेखा वशिष्ठ, चन्द्र रेखा ढडवाल, सुदर्शन वशिष्ठ आदि के लेखन में जहाँ पहाड़ की समस्याएँ विविधता एवं व्यापकता के साथ दिखती हैं, वहीं जनमेजय सिंह गुलेरिया, करनैल राणा आदि की सुंदर आवाजों में हिमाचल का पहाड़ी लोक सधता है। पहाड़ी लोग कैसे अनथक जीवन की चाप पर संघर्षों भरे गीत उकेरते हैं उसकी पूरी धूम यहाँ के लोक साहित्य में मिलती है। बुरांश के फूलों की महक, चीड़-देवदार की भीनी सुवास के बीच यहाँ के लोग जब उन्मुक्त होकर नाटी गाते हुए झूमते हैं तो उनके भोलेमन की सहज प्रस्तुति होती है। गद्दी जनजाति जब उन्मुक्त होकर भाव-गीत गाती है उसका सुन्दर निदर्शन हिमाचली हिंदी साहित्य में देखने को मिलता है। नवनीत शर्मा, कुमार कृष्ण, सरोज परमार, सुरेश सेन निशांत, आत्मा रंजन, प्रत्यूष गुलेरी, गनेश गनी, राजीव त्रिगर्ती आदि की हिन्दी कविताओं में हिमाचली जीवन का स्पंदन आसानी से महसूस किया जा सकता है। संघर्षों से अटी हुई कविताएँ पहाड़ के लोगों के पहाड़-भर दुःख को दिखाती हुई आशा-आकांक्षा की मिली-जुली कहानी कहती हैं। इन कविताओं में पहाड़ी स्पंदन की स्नेहिल धार बांसुरी की टेर के साथ उठती है और किन्तु पहाड़ों का अदेखा दर्द, बंध्या नदी की चीत्कार, यहाँ के निवासी ही जानते हैं। ऐसे में हिमाचली लोक अपनी खनक और खिलखिलाहट के साथ आज भी अपनी छटा बिखेर रहा है। पर्वतीय सौन्दर्य, तालों-झरनों के सौन्दर्य के बीच श्रम का अपूर्व राग हिमाचल में सुरक्षित है। आखिर हो भी क्यों न ! दैवीय चेतना से उद्भासित हिमाचल में देव-संस्कृति का परस और प्रेम आसानी से देखा जा सकता है। यहाँ के पहाड़ी लोगों के उद्गम साहस एवं खिलखिलाती हँसी को यहाँ के साहित्य में देखा जा सकता है। हिमाचली कथाकारों, कवियों एवं ग़ज़लकारों ने उसे अक्षुण्ण रखा है। प्रस्तुत आलेख में काँगड़ा जिले के संस्कार गीतों की भाव-भूमि को देखने का प्रयास किया गया है। इसी श्रृंखला में ‘उड़ियां वे कागा’ एक अनूठा जन्म-गीत है जिसमें ससुराल में बैठी हुई बेटी कौवे कोयल एवं बादलों को दूत बनाकर अपनी माँ को सन्देश भेज रही है। लोक की सबसे बड़ी विशेषता सामूहिकता है जिसमें एकाकीबोध नहीं प्रत्युत सबको साथ लेकर आगे बढ़ने का बोध होता है, कुछ ऐसा ही बोध इस गीत में दिखता है। लोक रीति-रिवाज, परम्परा और आध्यात्मिकता को भी बड़ी सूक्ष्मता एवं अभिव्यंजकता के साथ प्रकट करता है, प्रस्तुत गीत में ‘भ्याई’ नामक लोकश्रुत देवी का आशीष भी प्रकट हुआ है, सपने में देखे हुए उन महत्वपूर्ण क्षणों को साझा कर रही है

जिसमें उसकी सास और जेठानी मुदित हैं कि वह शीघ्र माँ बनने वाली है।

उड़ेयां वे कागा बडिया भ्यागा, इक सुन्हेड़ा लेई जा।
जाई बोलेयां मेरिया अम्मां नरवेदणिया, धीया जो सुपना होया ऐ।
सुपने दे विच सस सुहागण, हरेयां नरेला लेई आई।
चुप करेयां धीए सर्व सुहागणी, सुपने आई ऐ भ्याई,
जाई बोलेआ मेरिया अम्मां नरवेदणिया, धीया जो सुपना होया ऐ।

गर्भवती स्त्री के मनोभावों को दर्शाता हुआ लोकगीत 'डुग्धी-डुग्धी बासी' देखने योग्य है जिसमें नीची जमीन पर बने घर में रहने वाली स्त्री ऊंचाई पर बने बंगले में रहने की कामना करती है। तभी औचक उसका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और वह पति से अपनी सास को बुलाने की बात कहती है। इस गीत में जहाँ एक ओर गर्भावस्था में हो रहे चित्त के अवसाद को दर्शाया गया है वहीं सास-ननद एवं जेठानी के साथ दुःख, संताप के गहरे कल्मष को मिलकर दूर करने का भाव भी दिखता है –

डुग्धी-डुग्धी बासी, लगदी उदासी डोला, उच्चेयाँ बंगला पुआई दे।
बंगला पुआई दे, मोरियाँ रखाई दे डोला, विच-विच सीसे जड़ाई दे।
पैड़ियां चड़दियां गया लसकारा डोला, मेरिया सस्सू सदाई दे।

लोकगीतों में विविध भावदशाएँ परिलक्षित होती हैं चूँकि लोकगीत जन-गीत हैं इसलिए इनमें आमजनता के विविध भाव सहजता के साथ प्रकट होते हैं। समाज में निर्धन व्यक्ति को कई बार हेय दृष्टि से देखा जाता है, जिसके कारण वे समाज की मुख्यधारा का अभिन्न अंग नहीं बन पाता। 'गरीबणी दा जाया' एक ऐसा ही गीत है जिसमें माँ के मन में कई दुश्चिंताएँ एवं दुहस्वप्न घर कर जाते हैं कि उनके गरीब बेटे से कोई ईर्ष्या न करे, उसके लिए अपशब्दों का प्रयोग न करे। कई देवी-देवताओं की अभ्यर्थना के बाद तो वह माँ बनी है, उसका लाल चिरजीवी हो, सबका नेह उसे मिले इस हेतु वह प्रेम निवेदन करती है –

काले महीने दियां न्हेरियां रातीं जन्मेया कृष्ण मुरारी,
नी मत दिंदिया सेइयो गाली, नी मत दिंदिया भैणों गाली,
नी गरीबणी दा जाया जी, गरीबणी दा जाया
कित्तणे देवी-देव मनाए तां ए नेमत पाई,
नी मत दिंदिया सेइयो गाली, नी मत दिंदिया भैणों गाली,
नी गरीबणी दा जाया जी, गरीबणी दा जाया।

काँगड़ा जनपद के सारे उत्सवों में प्रकृति के साथ सहजीवन एवं प्रेम की अनगिनत अवस्थाएँ दिखाई पड़ती हैं। पुत्र के जन्मोत्सव के समय सगे-संबंधियों की पगड़ी में हरी दूब भेंट करने की इच्छा का क्या कहना। दादा की पगड़ी में दूब अर्पित कर भेंट करने की प्रथा अद्भुत एवं निराली है –

हरेयां बागां दी मैं द्रुवा मंगानीआं
दादा जी दी पगड़ी सजायो मेरे राम।
बन्न पगड़िया दादा चुखंडिया जो जांदे
धन-धन करदी सुहाई मेरे राम।
हरेयां बागां दी मैं द्रुवां मंगानीआं।

भारत एक उत्सवधर्मी देश है, उत्सव मनाने की एवं उसका सफल निर्वाह करने की अद्भुत प्रथा हमारे देश में देखते बनती है। फिर पारिवारिक उत्सवों का कहना ही क्या! शिशु के जन्म लेने से लेकर उसके विवाह तक की जो समूची यात्रा है वह अत्यंत सुखद रूप धारण करता है उसकी पूरी टोह काँगड़ा के जनगीतों में प्रकट होती है। पुत्र के जन्म लेने के बाद पूरे परिवार में आनन्द की लहर का जो आभास दिखता है वह अतुलनीय है। पुत्र को राम और कृष्ण के प्रतीक रूप में देखने की परम्परा हमारे देश की है। हर मनुष्य देवता कैसे बने ? कैसे उसके चित्त में विधायक विचारों का आगमन हो यह चिंता हमारे लोक की जड़ों में है। 'घर वासुदेवे दे' नामक गीत में जन्मोत्सव के बाद हर्षातिरेक में पिता द्वारा दान करने की प्रथा का सुन्दर वर्णन मिलता है। नन्द पिता गऊओं का दान करते हैं जिनके सींग स्वर्ण जड़ित हैं। कृष्ण रूप बालक को भाट, ब्राह्मण आशीष देते हैं एवं स्त्रियाँ मंगलगीत गाती हैं ताकि बालक चिरजीवी रहे –

घर वसुदेवे दे जन्मेया पुतर
जसोदा पलंगै चढ़ी एस एस S।
नन्द करदा गऊआं दे दान
सोयने दे सिंग मढ़ी एस एस S।

भट्ट ब्राह्मण दिन्दे न सीसां
जीये स्हाढा कृष्ण हरि एस एस S।
आई तां गेइआं वृज दियां नारां,
सोलह सिंगार करी एस एस S।

लोक जीवन में अन्तः स्फुरणा दिखाई पड़ती है। मन के भाव, उद्गार लोक-चित्त को भिगोते हैं। रिश्तों को निभाते हुए पूरा जीवन जी लेने की चाह लोक में ही मिल सकती है। काँगड़ा के लोकगीतों की एक अद्भुत सुन्दरता इस बात में है कि कृष्ण लीला के माध्यम से सामान्य जीवन को जोड़कर देखने की चाह यहाँ है। कृष्ण की शरारतों मक्खन चुराना, राधा का हृदय तोड़ना इन प्रतीकों के माध्यम से जीवन को आकंठ जी लेने का भाव यहाँ उभरता है जो न केवल सुन्दर बिम्ब का निर्माण करता है अपितु लोक और शास्त्र की जुगलबंदी का अनूठा पक्ष भी है। जन्मदिवस मानते समय महिलायें कृष्ण की कथा को भी खुलकर गाती हैं जो सराहनीय है –

पत्थारां तां मारी मेरा घड़ा तोड़ेया, नी जसोधा तेरे लाल नै,
छोटी देई राधकां दा दिल तोड़ेया, नी जसोधा तेरे लाल नै
हल्ये च गड़वा गंगा जल पाणी, चरण धुआने दी बेल्ला मुख मोड़ेया
नी जसोधा तेरे लाल ने....
मैं ता तिजो पुच्छदी परीत कियां लाणी हो

काँगड़ा के लोकगीतों की सबसे बड़ी विलक्षणता इस बात की है कि हास परिहास एवं आकर्षण की शैली में कई बार इनका चित्रांकन है। देवर भाभी के बीच हास-परिहास का वातावरण सहज ही दिखाई पड़ता है। पहाड़ में खेलते हुए हुए गोभी के फूल को देखकर भाभी अपने मायके जाने की जिद करती है और देवर भाभी के प्रेम में जान देने की

धमकी देता है। संबंधों में उतावलापन एवं बचकानापन कई बार लोकगीतों में सहज ही उभरते हैं -

उची-उची रिड़ियां पत्यरू जे चमके खुड्डा बिच चमकेया पाणी
मैं ता तिजो पुच्छदी परीत कियां लाणी हो
सब सब फुलणु फुली समाए धारा फुलेया गोभी
भाबी चली प्योकियां तां देर चलां सोगी हो
उची-उची रिड़ियां पत्यरू जे चमके खुड्डा बिच चमकेया पाणी
मैं ता तिजो पुच्छदी परीत कियां लाणी हो

पहाड़ी गीतों में प्रेम के कई रूप दिखाई पड़ते हैं, माता-पिता का प्रेम अपने बालक के प्रति, पति-पत्नी का प्रेम, एक ही परिवेश में रहने वाले रहने वाले रहनवारों का प्रेम आदि। प्रेम की विविध छटाएँ लोकगीतों में दिखाई पड़ती हैं। इस कड़ी में 'जुग जियो धारा देयो गुजरो' नामक गीत बहुत महत्वपूर्ण है। जहाँ वनरक्षक एवं गुर्जर समुदाय की युवती के बीच पल पल रहा प्रेम यहाँ दिखाई पड़ता है। युवती कामना करती है कि उसका वनरक्षक बाबू बहुत जिए और लंबी उम्र को प्राप्त हो-

जुग जियो धारा देयो गुजरो
जुग जियो धारा देयो गुजरो
देना मेरे गार्ड जो बसेखा
गार्ड मेरा भोला जंगलाती हो
दिने सदण ता ईदा राती हो

प्रेम के जो विविध रूप कांगड़ा के लोकगीतों में दिखाई पड़ते हैं, उनमें प्राकृतिक तदाकारिता का बोध है। प्रकृति के साथ मानव जीवन में जो खिलावट आती है वह अभूतपूर्व होती है। प्रकृति के सहचर्य एवं साथ से जीवन महक उठता है। 'कुड़िए इंदर देइए' नामक लोकगीत बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है, इस गीत में इंद्र देई नामक एक युवती को पृथ्वी सिंह नामक एक युवक आकर्षित करता है लेकिन इंद्र देई यह जानना चाहती है कि वह व्यक्ति अविवाहित है या विवाहित। प्रेम में जो सहज जानने की इच्छा एवं ऐन्द्रिक आकर्षण कार्य करता है उसी से प्रेम को दृढ़ता एवं स्थायित्व मिलता है। इस गीत में प्रेम को लेकर आकर्षण तो है ही साथ ही बादल और वर्षा के माध्यम से प्रतीकों का सुन्दर निदर्शन है। कांगड़ा के लोकगीतों में जो अनुभूतिमयता है, भाव तरलता है वह अभूतपूर्व है। कैसे भीतर तक अनुभूति को रचने-बसने का मौक़ा मिले कैसे हम वास्तविक सहृदय बन सकें जो सच्चे एवं खरे हों यह बोध भी गीतों का प्राण है। इस गीत में आंखों से गिरने वाले आंसुओं को बदली के रूप में देखने का प्रयास है। युवती प्रेम में पगी हुई पूछती है तुम्हारी पगड़ी को किसने रंगा ? तुम्हारे रुमाल पर कढ़ाई किसने की ? इस सहज प्रश्न पूछने की इच्छा शक्ति में राग का अनोखा निर्वहन है। युवक उत्तर देता है कि मेरी भाभी ने पगड़ी को रंगा है और मेरी नार अर्थात् पत्नी ने रुमाल पर कढ़ाई की है। इतना सुनते ही इन्दर देई को बहुत बुरा लगता है। राग और विराग की हमारे जीवन में जो अहमियत है वह अनूठी है। हम चलते हैं प्रेम की तलाश में और कई बार विराग प्राप्त करते हैं इसकी अनूठी जुगलबंदी जीवन है। प्रस्तुत लोक गीत इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह कथा शैली में है। इसमें रिश्तों की अहमियत है, ननद-भाभी का रिश्ता, पति-पत्नी का रिश्ता, देवर-भाभी का रिश्ता जिस पतली डोर में बंधा होता है, भक्ति एवं विश्वास के उन रूपों को एक साथ यह लोकगीत प्रस्तुत करता है। 'कुड़िए इंदर देइए' को केवल

गीत कहना गीत की सही पहचान को सीमित करना होगा। असल में यह गीत भर नहीं है बल्कि उससे कहीं आगे रिश्तों में भरोसा, नोक-झोंक, सहृदयता की अद्भुत कसौटी है। इस गीत में सौतिया डाह भी दिखाई पड़ता है, प्रश्नों का उत्तर पाकार जब इंद्र देई चिढ़ती है तो वह कहीं हमारी सच्ची मनुष्यता एवं मानवीय दुर्बलताओं को दिखाने वाली बात बनकर उभरता है। पारम्परिक समाज में सौतिया डाह कैसे कार्य करता था, प्रेम कैसे यकायक विराग में बदल जाता था वह इस सुन्दर पारम्परिक लोक गीत में दिखता है -

कुत्थूआं ते उगमी काली बदली, ओ मुंडुआ पिरथी सिंह
कुत्थूआं ते उगमेया ठंडा नीर वे हां
छातिया ते उगमी काली बादली, ओ कुड़िए इंदरदेइए
नैना ते उगमेया ठंडा नीर वे हां
कुन्ही तां रंगी तेरी पगड़ी, ओ मुंडवा पिरथी सिंह
कुन्ही तां कडेया रुमाल वे हां
भावो तो रंगीओ मेरी पगड़ी ओ कुड़िए इंदरदेइए
नारा तां कडेया रुमाल रुमाल वे हां

कांगड़ा के संस्कार गीतों में सहजता है, सरलता है। एक खास किस्म का सामाजिक बोध यहाँ दिखता है जो एकाकी बोध नहीं उत्पन्न करता बल्कि समूचे जीवन को उभारने के साथ हंसी-रुदन, मिलन-बिछोह, हर्ष-विषाद, दैहिक-लोकोत्तर के कई रूप दिखाई पड़ते हैं। जीवन के विविध रूप कांगड़ा के लोकगीतों में दिखाई पड़ते हैं जो जन्म से प्रारंभ होते हैं और मृत्यु की समाप्ति तक एक लंबा वितान प्रस्तुत करते हैं। इन गीतों को देखने के बाद यह कहा जा सकता है कि ये गीत नायक नायिका के प्रेम, प्रोषित पतिका नायिका के विरह तक सीमित नहीं हैं इनकी गीतों में जीवन की हलचल एवं स्पंदन है। इस तरह हम देख पायेंगे कि अपने अपने परिवेश का सूक्ष्म चित्रण करते हुए लोक-मन का यही प्रयास होता है कि पूरेपन के साथ सारे वृत्त-चित्र उभरें जिससे कि इतिहास, मिथक, संस्कृति से होते हुए पूरे जनमानस का साक्षात्कार किया जा सके।

संदर्भ :

1. सिंह, बाल्मीकि प्रसाद, 'संस्कृति, राज्य, कलाएँ और उनसे परे', भूमिका ('लेखकीय'), पृष्ठ संख्या xii
2. गुलेरिया, जनमेजय सिंह, ढडवाल, चन्द्ररेखा, 'लोकभाव स्वरांजली', भाग-एक, पृष्ठ संख्या-49-50
3. गुलेरिया, जनमेजय सिंह, ढडवाल, चन्द्ररेखा, 'लोकभाव स्वरांजली', भाग-एक, पृष्ठ संख्या-17
4. गुलेरिया, जनमेजय सिंह, ढडवाल, चन्द्ररेखा, 'लोकभाव स्वरांजली', भाग-एक, पृष्ठ संख्या- 51-52
5. गुलेरिया, जनमेजय सिंह, ढडवाल, चन्द्ररेखा, 'लोकभाव स्वरांजली', भाग-एक, पृष्ठ संख्या- 15
6. गुलेरिया, जनमेजय सिंह, ढडवाल, चन्द्ररेखा, 'लोकभाव स्वरांजली', भाग-एक, पृष्ठ संख्या-23
7. गुलेरिया, जनमेजय सिंह, ढडवाल, चन्द्ररेखा, 'लोकभाव स्वरांजली', भाग-एक, पृष्ठ संख्या- 143
8. गुलेरिया, जनमेजय सिंह, ढडवाल, चन्द्ररेखा, 'लोकभाव स्वरांजली', भाग-दो, पृष्ठ संख्या- 125
9. गुलेरिया, जनमेजय सिंह, ढडवाल, चन्द्ररेखा, 'लोकभाव स्वरांजली', भाग-दो, पृष्ठ संख्या- 39
10. गुलेरिया, जनमेजय सिंह, ढडवाल, चन्द्ररेखा, 'लोकभाव स्वरांजली', भाग-दो, पृष्ठ संख्या- 109